श्री जगन्नाथ स्तोत्र

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण ।
त्राहि मां सर्वलोकेश जन्मसंसारसागरात् ॥१॥

अर्थ - 'वासुदेव। आपको नमस्कार है। आप मोक्ष के कारण हैं। आपको मेरा नमस्कार है। सम्पूर्ण लोकों के स्वामी परमेश्वर। आप इस जन्म-मृत्युरूपी संसार-सागर से मेरा उद्धार कीजिये।

निर्मलाम्बरसंकाश नमस्ते पुरुषोत्तम ।
संकर्षण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां धरणीधर ॥२॥

अर्थ - पुरुषोत्तम! आपका स्वरूप निर्मल आकाश के समान है। आपको नमस्कार है। सबको अपनी ओर खींचनेवाले संकर्षण! आपको प्रणाम है। धरणीधर! आप मेरी रक्षा कीजिये।

नमस्ते हेमगर्भाभ नमस्ते मकारध्वज ।
रतिकान्त नमस्तेऽस्तु त्राहि मां संवरान्तक ॥३॥

अर्थ - हेमगर्भ (शालग्रामशिला) की-सी आभावाले प्रभो! आपको नमस्कार है। मकरध्वज! आपको प्रणाम है। रतिकान्त! आपको नमस्कार है। शम्बरासुर का संहार करनेवाले प्रद्युम्न! आप मेरी रक्षा कीजिये।

नमस्तेऽञ्जनसंकाश नमस्ते विबुधप्रिय ।
नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहिं मां वरदो भव ॥४॥

अर्थ - भगवन्! आपका श्रीअङ्ग अञ्जन के समान श्याम है। भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार है। अनिरुद्ध! आपको प्रणाम है।आप मेरी रक्षा करें और वरदायक बनें।

नमस्ते विबुधावास नमस्ते विबुधप्रिय ।
नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहिं मां शरणागतम् ॥५॥

अर्थ - सम्पूर्ण देवताओं के निवास स्थान! आपको नमस्कार है। देवप्रिय! आपको प्रणाम है। नारायण! आपको नमस्कार है। आप मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये।

eAstroHelp

नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गायुध ।
चतुर्मुख जगद्धाम त्राहिं मां प्रपितामह ॥६॥

अर्थ - बलवानों में श्रेष्ठ बलराम! आपको प्रणाम है। हलायुध! आपको नमस्कार है। चतुर्मुख! जगद्धाम! प्रपितामह ! मेरी रक्षा कीजिये।

नमस्ते नीलमेघाभ नमस्ते त्रदशार्जित ।
त्राहिं विष्णो जगन्नाथ मग्नं मां भवसागरे ॥७॥

अर्थ - नील मेघ के समान आभावाले घनश्याम! आपको नमस्कार है। देवपूजित परमेश्वर! आपको प्रणाम है। सर्वव्यापी जगनाथ! मैं भवसागर में डूबा हुआ हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।

प्रलयानलसं काश नमस्ते दितिजान्तक ।
नरसिंह महावीर्य त्राहि मां दीप्तलोचन ॥८॥

अर्थ - प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी तथा दहकते हुए नेत्रोंवाले महापराक्रमी दैत्यशत्रु नृसिंह! आपको नमस्कार है। आप मेरी रक्षा कीजिये।

यथा रसातलादुर्वीं त्वया दंष्ट्रोद्धृता पुरा ।
तथा महावराहस्त्वं त्राहि मांदुःखसागरात् ॥९॥

अर्थ - पूर्वकाल में महावाराहरूप धारण कर आपने जिस प्रकार इस पृथ्वी का रसातल से उद्धार किया था, उसी प्रकार मेरा भी दुःख के समुद्र से उद्धार कीजिये।

तवैता मूर्तयः कृष्ण वरदाः संस्तुता मया ।
तवेमेबलदेवाद्याः पृथग्रूपेण संस्थिताः ॥१०॥

अङ्गानि तव देवेश गरुत्माद्यास्तता प्रभो ।
दिक्पालाः सायुधाश्चैव केशवाद्यास्तथाऽच्युत ॥११॥

ये चान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः ।
तेऽपि सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन ॥१२॥

मयाऽर्चिताः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः ।
प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥१३॥

eAstroHelp

अर्थ - कृष्ण! आपके इन वरदायक स्वरूपों का मैंने स्तवन किया हैं। ये बलदेव आदि, जो पृथक् रुप से स्थित दिखायी देते हैं,आपके ही अङ्ग हैं। देवेश! प्रभो! अच्युत! गरुड़ आदि पार्षद, आयुधो सहित दिक्पाल तथा केशव आदि जो आपके अन्य भेद मनीषियों द्वारा बतलाये गये हैं, उन सबका मैंने पूजन किया है। प्रसन्न तथा विशाल नेत्रोंवाले जगन्नाथ! देवेश्वर! पूर्वोक्त सब स्वरूपों के साथ मैंने आपका स्तवन और वन्दन किया है। आप मुझे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देनेवाला वर प्रदान करें।॥१०-१३॥

भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संकर्षणादयः ।
तव पूर्जार्थसंभूतास्ततस्त्वयि समाश्रिताः ॥१४॥

अर्थ - हरे! संकर्षण आदि जो आपके भेद बताये गये हैं, वे सब आपकी पूजा के लिये ही प्रकट हुए हैं; अतः वे आपके ही आश्रित हैं।

न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः ।
विविधं तव यद्रूपमुक्तं तदुपचारतः ॥१५॥

अर्थ - देवेश! वस्तुतः आप में कोई भेद नहीं है। आपके जो अनेक प्रकार के रूप बताये जाते हैं, वे सब उपचार से ही कहे गये हैं;

अद्वैतं त्वां कथं द्वैतं वक्तुं शक्नोतिमानवः ।
एकस्त्वं हि हरे व्यापी चित्स्वबावो निरञ्जनः ॥१६॥

अर्थ - आप तो अद्वैत हैं। फिर कोई भी मनुष्य आपको द्वैतरूप कैसे कह सकता है। हरे! आप एकमात्र व्यापक, चित्स्वभाव तथा निरञ्जन हैं।

परमं तव यद्रुपं भावाभावविवर्जितम् ।
निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥१७॥

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रव्यवस्थितम् ।
तद्देवास्च न जानन्ति कथं जानाम्यहं प्रभोः ॥१८॥

अर्थ - आपका जो परम स्वरूप है, वह भाव और अभाव से रहित, निर्लेप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, समस्त उपाधियों से निर्मुक्त और सत्तामात्र रूप से स्थित है। प्रभो! उसे देवता भी नहीं जानते, फिर मैं ही कैसे उसे जान सकता हूँ।

eAstroHelp

अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।
शङ्खचक३गदापाणिमुकुटाङ्गदधारिणम् ॥१९॥

अर्थ - इसके सिवा आपका जो अपर स्वरूप है, वह पीताम्बरधारी और चार भुजाओंवाला है। उसके हाथों में शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित हैं। वह मुकुट और अङ्गद धारण करता है।

श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ।
तदर्चयन्ति विबुधा ये चान्ये तव संश्रयाः ॥२०॥

अर्थ - उसका वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्न से युक्त है तथा वह वनमाला से विभूषित रहता है। उसी की देवता तथा आपके अन्यान्य शरणागत भक्त पूजा करते हैं।

देवदेव सुरश्रेष्ठ भक्तानामभयप्रद ।
त्राहि मां पद्मपत्राक्ष मग्नं विषयसागरे ॥२१॥

अर्थ - देवदेव! आप सब देवताओं में श्रेष्ठ एवं भक्तों को अभय देनेवाले हैं। कमलनयन ! मैं विषयों के समुद्र में डूबा हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये।

जान्यं पश्यामि लोकेश यस्याहं शरणं व्रजे ।
त्वामृते कमलाकान्त प्रसीद मधुसूदन ॥२२॥

अर्थ - लोकेश! मैं आपके सिवा और किसी को नहीं देखता, जिसकी शरण में जाऊँ। कमलाकान्त! मधुसूदन! मुझ पर प्रसन्न होइये।

राव्याधिशतैर्युक्तो नानादुःखैर्निपीडितः ।
हर्षशोकान्वितो मूढः कर्मपाशैः सुयन्त्रितः ॥२३॥

अर्थ - मैं बुढ़ापे और सैकड़ों व्याधियों से युक्त हो भाँति-भौति के दुःखों से पीड़ित हूँ तथा अपने कर्मपाश में बँधकर हर्ष-शोक में मग्न हो विवेकशून्य हो गया हूँ।

पतितोऽहं महारौद्रे घोरे संसारसागरे ।
विषमोदकदुष्पारे रागद्वेषझषाकुले ॥२४॥

अर्थ - अत्यन्त भयंकर घोर संसार-समुद्र में गिरा हुआ हूँ। यह विषयरूपी जलराशि के कारण दुस्तर है। इसमें राग-द्वेषरूपी मत्स्य भरे पड़े हैं।

eAstroHelp

इन्द्रियावर्तगम्भीरे तृष्णशोकोर्मिसंकुले ।
निराश्रये निरालम्बे निःसारेऽत्यन्तच्ञ्चले ॥२५॥

अर्थ - इन्द्रियरूपी भँवरों से यह बहुत गहरा प्रतीत होता है। इसमें तृष्णा और शोकरूपी लहरें व्याप्त हैं। यहाँ न कोई आश्रय है, न कोई अवलम्ब। यह सारहीन एवं अत्यन्त चंचल है।

मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिरं प्रभो ।
नानाजातिसहस्रेषु जयमानः पुनः पुनः ॥२६॥

अर्थ - प्रभो! मैं माया से मोहित होकर इसके भीतर चिरकाल से भटक रहा हूँ। हजारों भिन्न-भिन्न योनियों में बारंबार जन्म लेता हूँ।

मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च ।
विविधान्यनुभूतानि संसारेऽस्मिञ्जनार्दन ॥२७॥

वेदाः साङ्ग मयाऽधीताः शास्त्राण्ययुतानि च ।
विविधान्यनुभूतानि संसारेऽस्मिञ्जनार्दन ॥२८॥

अर्थ - जनार्दन ! मैंने इस संसार में नाना प्रकार के हजारों जन्म धारण किये हैं। अङ्गो सहित वेद, नाना प्रकार के शास्त्र, इतिहास-पुराण तथा अनेक शिल्पों का अध्ययन किया है।

असंतोषाश्च संतोषाः संचयापचया व्ययाः ।
मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्ध्यक्षयेतराः ॥२९॥

अर्थ - यहाँ मुझे कभी असंतोष मिला है, कभी संतोष । कभी धन का संग्रह किया है, कभी हानि उठायी है और कभी बहुत खर्च किये हैं। जगन्नाथ! इस प्रकार मैंने ह्रास-वृद्धि, उदय और अस्त अनेक बार देखे हैं;

भार्यारिमित्रबन्धूनां वियोगाः संगमास्तता ।
पितरो विविधा दृष्टा मातरस्च तथा मया ॥३०॥

अर्थ - स्त्री, शत्रु, मित्र तथा बन्धु-बान्धवों के संयोग और वियोग भी देखने को मिले हैं। मैंने अनेक पिता देखे हैं और अनेक माताओं का दर्शन किया है।

दुःखानि चानुबूतानि यानि सौख्यान्यनेकशः ।
प्राप्ताश्च बान्धवाः पुत्रा भ्रातरोज्ञतयस्तथा ॥३१॥

अर्थ - अनेक प्रकार के जो दुःख और सुख हैं, उनके अनुभव का भी मुझे अवसर मिला है। भाई, बन्धु, पुत्र और कुटुम्बी भी प्राप्त हुए हैं।

eAstroHelp

मयोषितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विण्मुत्रपिच्छले ।
गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो ॥३२॥

दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ययौवनागोचरे ।
वार्धके च हृषीकेश तानि प्राप्तानि वै मया ॥३३॥

अर्थ - विष्ठा और मूत्र की कीच से भरे हुए स्त्रियों के गर्भाशय में भी मैंने निवास किया है। प्रभो! गर्भवास में जो महान् दुःख होता है, उसका भी मैंने अनुभव किया है। बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में जो अनेक प्रकार के दुःख होते हैं, उनसे भी मैं वञ्चित नहीं रहा।

मरणे यानि दुःखानि यममार्गे यमालये ।
मया तान्यनुभूतानि नरके यातनास्तथा ॥३४॥

अर्थ - मृत्यु के समय, यमलोक के मार्ग तथा यमराज के घर में जो दुःख प्राप्त होते हैं, उनको तथा नरकों में होनेवाली यातनाओं को भी मैंने भोगा है।

कृमिकीटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम् ।
महिषोष्ट्रगवां चैव तथाऽन्येषां वनौकसाम् ॥३५॥

अर्थ - कृमि, कीट, वृक्ष, हाथी, घोड़े, मृग, पक्षी, भैंसे, ऊँट, गाय तथा अन्य वनवासी जन्तुओं को योनि में मुझे जन्म लेना पड़ा है।

द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु ।
धनिनां क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥३६॥

नृपाणां नृपभृत्यानां तथाऽन्येषां च देहिनाम् ।
गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः ॥३७॥

अर्थ - समस्त द्विजातियों और शूद्रों के यहाँ भी मेरा जन्म हुआ है। देव! धनी क्षत्रियों, दरिद्र तपस्वियों, राजाओं, राजा के सेवकों तथा अन्य देहधारियों के घरों में भी मैं अनेक बार उत्पन्न हो चुका हूँ।

गतोऽस्मि दासतां नाथ भृत्यानां बहुशो नृणाम् ।
दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामित्वं च तथा गतः ॥३८॥

अर्थ - नाथ! मुझे अनेकों बार ऐसे मनुष्यों का दास होना पड़ा है, जो स्वयं दूसरों के दास हैं। मैं दरिद्र, धनी और स्वामी भी रह चुका हूँ।

eAstroHelp

हतो मया हताश्चान्ये घातितो घातितास्तथा ।
दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥३९॥

अर्थ - मुझे दूसरों ने मारा और मेरे हाथ से दूसरे मारे गये। मुझे दूसरों ने मरवाया और मैंने भी दूसरों की हत्या करवायी। मुझे दूसरों ने और मैंने दूसरों को अनेकों बार दान दिये हैं।

पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्राणां कृतेन च ।
धनिनां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥४०॥

अर्थ - जनार्दन! पिता, माता, सुहृद, भाई और पत्नी के लिये मैंने लज्जा छोड़कर धनियों, श्रोत्रियों, दरिद्रों और तपस्वियों के सामने दीनता से भरी बातें की हैं।

उक्तं दैन्यं च विविधं त्यक्त्वा लज्जां जनार्दन ।
देवतिर्ङ्मनुष्येषु स्थावरेषु चरेषु च ॥४१॥

न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न गतः प्रभो ।
कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते ॥४२॥

अर्थ - प्रभो! देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा अन्य स्थावर-जङ्गम भूतों में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मेरा जाना न हुआ हो। जगत्पते! कभी नरक में और कभी स्वर्ग में मेरा निवास रहा है।

कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यग्गतेषु च ।
जलयन्त्रे यता चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना ॥४३॥

याति चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति ।
तथा चाहं सुरश्रेष्ठ कर्मरज्जुसमाव-तः ॥४४॥

अर्थ - कभी मनुष्यलोक में और कभी तिर्यग्योनियों में जन्म लेना पड़ा है। सुरश्रेष्ठ! जैसे रहट में रस्सी से बँधी हुई घंटी कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती और कभी बीच में ठहरी रहती है, उसी प्रकार मैं कर्मरूपी रज्जु में बँधकर दैवयोग से ऊपर, नीचे तथा मध्यवर्ती लोक में भटकता रहता हूँ।

भ्रमामि सुचिरं कालं नान्तं पश्यामि कर्हिचित् ।
न जाने किं करोम्यद्य हरे व्याकुलितेन्द्रियः ॥४५॥

eAstroHelp

अर्थ - इस प्रकार यह संसार-चक्र बड़ा ही भयानक एवं रोमाञ्चकारी है। मैं इसमें दीर्घकाल से घूम रहा हूँ, किंतु कभी इसका अन्त नहीं दिखायी देता। समझ में नहीं आता, अब क्या करूँ। हरे! हमारी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं।

शोकतृष्णाभिबूतोऽहं कांदिशीको विचेतनः ।
इदानीं त्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः ॥४६॥

अर्थ - मैं शोक और तृष्णा से आक्रान्त होकर अब कहाँ जाऊँ। मेरी चेतना लुप्त हो रही है। देव! इस समय व्याकुल होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ।

त्राहि मां दुःखतं कृष्ण मग्नं संसारसागरे ।
कृपां कुरु जगन्नाथ भक्तं मं यदि मन्यसे ॥४७॥

अर्थ - कृष्ण! मैं संसार-समुद्र में डूबकर दुःख भोगता हूँ। मुझे बचाइये। जगत्राथ! यदि आप मुझे अपना भक्त मानते हैं तो मुझपर कृपा कीजिये।

त्वदृते नास्ति मे बन्धुर्योऽसौ चिन्तां करिष्यति ।
देव त्वां नाथमासाद्य न भयं मेऽस्ति कुत्रचित् ॥४८ ॥

जीविते मरणे चैव योगक्षेणेऽथ वा प्रभो ।
ये तु त्वां विधिवद्देव नार्चयन्ति नराधमाः ॥४९ ॥

अर्थ - आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा बन्धु नहीं है, जो मेरी चिन्ता करेगा। देव! प्रभो! आप जैसे स्वामी की शरण में आकर अब मुझे जीवन, मरण अथवा योगक्षेम के लिये कहीं भी भय नहीं होता। देव! जो नराधम आपकी विधिपूर्वक पूजा नहीं करते,

सुगतिस्तु कथं तेषां भवेत्संसारबन्दनात् ।
किं तेषां कुलशीलेन विद्यया जीवितेन च ॥५०॥

येषां न जायते भक्तिर्जगद्धातरि केशवे ।
प्रकृतिं त्वासुरीं प्राप्य ये त्वां निन्दन्ति मोहिताः ॥५१॥

पतन्ति नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः ।
न तेषां निष्कृकिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात् ॥५२॥

eAstroHelp

अर्थ - उनकी इस संसार-बन्धन से मुक्ति एवं सद्गति कैसे हो सकती है। जगदाधार भगवान् केशव में जिनकी भक्ति नहीं होती, उनके कुल, शील, विद्या और जीवन से क्या लाभ हैं। जो आसुरी प्रकृति का आश्रय ले विवेकशून्य हो आपकी निन्दा करते हैं, वे बारंबार जन्म लेकर घोर नरक में पड़ते हैं तथा उस नरक-समुद्र से उनका कभी उद्धार नहीं होता।

ये दूषयन्तित दुर्वृत्तास्त्वां देव पुरूषाधमाः ।
यत्र यत्र भवेज्जन्म मम क्रमनिबन्धनात् ॥५३॥

तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चास्तु दृढा सदा ।
आराध्य त्वां सुरा दैत्या नराश्चान्येऽपि संयताः ॥५४॥

अवापुः परमां सिद्धिं कस्त्वां देव न पूजयेत् ।
न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तेतुं त्वां त्रिदसा हरे ॥५५॥

अर्थ - देव ! जो दुराचारी नीच पुरुष आप पर दोषारोपण करते हैं, वे कभी नरक से छुटकारा नहीं पाते। हरे! अपने कर्मों में बंधे रहने के कारण मेरा जहाँ कहीं भी जन्म हो, वहाँ सर्वदा आप में मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे। देव! आपकी आराधना करके देवता, दैत्य, मनुष्य तथा अन्य संयमी पुरुषों ने परम सिद्धि प्राप्त की है। फिर कौन आपकी पूजा न करेगा।

कथं मानुषबुद्ध्याऽहं स्तौमि त्वां प्रकृते परम् ।
तथा चाज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो ॥५६॥

अर्थ - भगवन् ! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, फिर मानव-बुद्धि लेकर मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ। क्योंकि आप प्रकृति से परे परमेश्वर हैं।

तत्क्षमस्वापराधं मे यदि तेऽस्ति दया मयि ।
कृपापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥५७॥

तस्मात्प्रसीद देवेश भक्तस्नेहं समाश्रितः ।
स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्ति भावेन चेतसा॥
साङ्गं भवतु ततसर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥५८॥

अर्थ - प्रभो! मैंने अज्ञान के भाव से आपकी स्तुति की है। यदि आपकी मुझपर दया हो तो मेरे इस अपराध को क्षमा करें। हरे! साधु पुरुष अपराधी पर भी क्षमाभाव ही रखते हैं, अतः देवेश्वर! आप भक्त स्नेह के वशीभूत होकर मुझपर प्रसन्न होइये। देव! मैंने भक्तिभावित चित्त से आपकी जो स्तुति की है, वह साङ्गोपाङ्ग सफल हो। वासुदेव! आपको नमस्कार है।

eAstroHelp

॥ ब्रह्मोवाच ॥

इत्थं स्तुतास्तदा तेन प्रसन्नो गरुडध्वजः ।
ददौ तस्मै मुनिश्रेष्ठाः सकलं मनसेप्सितम् ॥५९ ॥

अर्थ - ब्रह्माजी कहते हैं-राजा इन्द्रद्युम्न के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् गरुड़ध्वज ने प्रसन्न होकर उनका सब मनोरथ पूर्ण किया।

यः संपूज्य जगन्नाथं प्रत्यहं स्तौति मानवः ।
स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्षं लभते ध्रुवम् ॥६०॥

अर्थ - जो मनुष्य भगवान् जगन्नाथ का पूजन करके प्रतिदिन इस स्तोत्र से उनका स्तवन करता है, वह बुद्धिमान् निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

त्रिसंध्यं यो जपेद्विद्वानिदं स्तोत्रवरं शुचिः ।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥६१॥

अर्थ - जो विद्वान् पुरुष तीनों संध्याओं के समय पवित्र हो इस श्रेष्ठ स्तोत्र का जप करता है, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पाता है।

यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि श्रावयेद्वा समाहितः ।
स लोकं शाश्वतं विष्णोर्याति निर्धूतकल्मषः ॥६२॥

अर्थ - जो एकाग्रचित्त हो इसका पाठ या श्रवण करता अथवा दूसरों को सुनाता है, वह पापरहित हो भगवान् विष्णु के सनातन धाम में जाता है।

धन्यं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम् ।
गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥६३॥

अर्थ - यह स्तोत्र परम प्रशंसनीय, पापों को दूर करनेवाला, भोग एवं मोक्ष देनेवाला, कल्याणमय, गोपनीय, अत्यन्त दुर्लभ तथा पवित्र है। इसे जिस किसी मनुष्य को नहीं देना चाहिये।

न नास्तिकाय मूर्खाय न कृतध्नाय मानिने ।
न दुष्टमतये दद्यान्नाभक्ताय कदाचन ॥६४॥

॥६६॥

eAstroHelp

अर्थ - नास्तिक, मूर्ख, कृतघ्न, मानी, दुष्टबुद्धि तथा अभक्त मनुष्य को कभी इसका उपदेश न दे।

दातव्यं भक्तियुक्ताय गुणशीलान्विताय च ।
विष्णुभक्ताय शान्ताय श्रद्धानुष्ठानशालिने ॥६५॥

इदं समस्ताघविनाशहेतुः, कारुण्यसंज्ञं सुखमोभदं च ।
अशेषवाञ्छाफलदं वरिष्ठं, स्तोत्रं मयोक्तं पुरुषोत्तमस्य

ये तं सुसूक्ष्मं विमला मुरारिं, ध्यायन्ति नित्यं पुरषं पुराणम् ।
ते मुक्तिभाजः प्रविशनति विष्णुं, मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हुतमध्वराग्नौ ॥६७॥

अर्थ - जिसके हृदय में भक्ति हो, जो गुणवान्, शीलवान्, विष्णुभक्त, शान्त तथा श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करनेवाला हो, उसी को इसका उपदेश देना चाहिये। जो निर्मल हृदयवाले मनुष्य उन परम सूक्ष्म नित्य पुराणपुरुष मुरारि श्रीविष्णुभगवान का ध्यान करते हैं, वे मुक्ति के भागी हो भगवान् विष्णु में प्रवेश कर जाते हैं-ठीक उसी तरह, जैसे मन्त्रों द्वारा यज्ञाग्नि में हवन किया हुआ हविष्य भगवान् विष्णु को प्राप्त होता है।

एकः स देवो भवदुःखहन्ता, परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यत् ।
द्र (स्र) ष्टा स पाता स तु नाशकर्ता, विष्णुः समस्ताखिलसारभूतः ॥६८॥

अर्थ - एकमात्र वे देवदेव भगवान् विष्णु ही संसार के दुःखों का नाश करनेवाले तथा परों से भी पर हैं। उनसे भिन्न किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं है। वे ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। वे ही समस्त संसार में सारभूत हैं।

किं विद्यया किं स्वगुणैस्च तेषां, यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरुग्रैः ।
येषां न भक्तिर्भवतीह कृष्णे, जगद्गुरौ मोक्षसुखप्रदे च ॥ ६९॥

अर्थ - मोक्षसुख देनेवाले जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण में यहाँ जिनकी भक्ति नहीं होती, उन्हें विद्या से, अपने गुणों से तथा यज्ञ, दान और कठोर तपस्या से क्या लाभ हुआ।

लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान् मखैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः ।
ज्ञाता स दाता स तु स्त्यवक्ता, यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये ॥७०॥

eAstroHelp

अर्थ - जिस पुरुष की भगवान् पुरुषोत्तम के प्रति भक्ति है, वही संसार में धन्य, पवित्र और विद्वान् है। वही, यज्ञ, तपस्या और गुणों के कारण श्रेष्ठ है तथा वही ज्ञानी, दानी और सत्यवादी है।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे कारुण्यस्तवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

श्री जगन्नाथ स्तोत्र समाप्त॥

eAstroHelp